पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, कलश २७१,
ता. ०३-०८-१९९०, प्रवचन नंबर ५२१

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। उसका लास्ट का, अंतिम, परिशिष्ठ अधिकार है। उसमें २७१ नंबर का कलश है। अमृतचंद्राचार्य भगवान ने लिखा (है)। उसके ऊपर अपने उपकारी पूज्य गुरुदेव ने व्याख्यान किया है। उस व्याख्यान का स्पष्टीकरण चलता है।

ये, आत्मा की दो प्रकार की भूलें अनादिकाल से चलती आ रही है। भूल समयवर्ती है। भूल त्रिकालवर्ती नहीं होती है। इसलिए आत्मभान होने से वो भूल निकल जाती है, टल जाती है। दो प्रकार की भूलें क्या हैं? कि एक तो भगवान जो आत्मा है अपना, वो स्वभाव से अकर्ता, ज्ञायक, ज्ञाता होने पर भी, परिणाम का कर्ता मानता है। पर का कर्ता तो है ही नहीं। पर के करने की बात तो उपचार से भी निकल गई है। व्यवहार से भी पर का कर्ता नहीं है। मगर जो परिणमता है, वो परिणाम का आत्मा कर्ता है, ऐसा उपचार, अकर्ता आत्मा पर आता है। है उपचार का कथन।

टोडरमलजी जी साहब ने कहा कि यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार, ऐसा कहा है, बस। दो बात कही सुनहरी। तो एक तो वो भूल हो गई आत्मा की, अनंतकाल से, कि अपना जो परिणाम, पराश्रित हो या स्वाश्रित परिणाम हो, कोई भी परिणाम हो, परिणाम मात्र! परिणाम का कर्ता परिणाम होने पर भी और आत्मा अकर्ता होने पर भी, आत्मा को, ये देह मेरा परिणाम है और मैं उसको करता हूँ (ऐसा मानता है), क्योंकि दृष्टि पर्याय पर है उसकी। अकर्तास्वभाव पर दृष्टि नहीं है, ऐसे उसको भ्राँति हो गई कि मैं परिणाम का कर्ता हूँ, वो अज्ञान है, अध्यवसान है। वो अनंतदुःख का कारण है, कर्ताबुद्धि। वो प्रथम में प्रथम छोड़ने लायक है, अकर्ता का लक्ष्य करके। एक तो यह भूल, है अकर्ता मानता है कर्ता।

दूसरी भूल, प्रत्येक जीव, प्रत्येक समय में स्व को जानता होने पर भी, मैं पर को जानता हूँ, ऐसा मानता है, उसका नाम भ्राँति है। जैसे परिणाम का कर्ता (परिणाम) होने पर भी, परिणाम का मैं कर्ता हूँ, ऐसा माने, तो वो मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, वो पापी है। मिथ्यात्व का नाम पाप है और प्रत्येक जीव, भव्य हो कि अभव्य, एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी, जीवमात्र, प्रत्येक समय में प्रत्येक समय, स्व को जानता होने पर भी मानता है कि मैं पर को जानता हूँ, उसका नाम भ्राँति है। शास्त्रीय भाषा में उसका नाम अध्यवसान है, मिथ्यादर्शन है, मिथ्याज्ञान है, मिथ्याचारित्र है।

तो अभी तीन महीने का कोर्स, पहले तो अकर्ता में आना चाहिए और अकर्ता में जो उत्तीर्ण (पास) हो गया, (तो) दूसरा (कि) स्वप्रकाशक ज्ञान है, पर को जानता नहीं है, जाननहार को ही जानता है। प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव स्व को जानता ही है। एक समय ऐसा नहीं कि कोई जीव अपने ज्ञायक आत्मा को जानता नहीं है, ऐसा एक समय भी है नहीं। आनेवाला नहीं है। जो अपना भगवान आत्मा जानने

में न आवे, तो आत्मा के अंदर एक प्रमेयत्व नाम का, ज्ञेयत्व नाम का जो धर्म है, उसका नाश हो जाता है। तो धर्म का नाश तो कभी होनेवाला नहीं है। इसलिए ज्ञायक आत्मा में प्रमेयत्व, ज्ञेयत्व नाम का अपना धर्म है, निरपेक्ष, इसलिए अपनी ज्ञान की पर्याय में जानने में आ रहा है और ज्ञान का जो धर्म जानना है, तो ज्ञान जानता है और ज्ञायक जानने में आ रहा है। ऐसा ज्ञाता-ज्ञेय का (संबंध है)। है तो निश्चय, भेद करो तो व्यवहार है। क्या कहा?

समय-समय पर अपने उपयोग में, राग में नहीं... राग तो अँधा है और राग जीव का परिणाम भी नहीं है। मगर जो उपयोग है लक्षण, वो समय-समय पर प्रगट होता है और उस उपयोग में भगवान आत्मा, उपयोग में उपयोग है। उपयोग में उपयोग आता नहीं है, उपयोग में उपयोग है। स्वीकार करता है, तो शुद्धोपयोग हो जाता है। तो अपना जो उपयोग है, उस उपयोग में भगवान आत्मा जानने में आ रहा है, प्रत्येक जीव को प्रत्येक समय में, भव्य हो कि अभव्य हो। और आत्मा का ज्ञान जानता है और ज्ञायक उसमें जानने में आता है, ऐसा। आहाहा! ऐसा फंक्शन अनादि-अनंत चालू है। आहाहा! फंक्शन यानि प्रक्रिया।

प्रकाश में सूर्य समय-समय पर प्रसिद्ध हो रहा है। वो सूर्य को नहीं देखता है और प्रकाश के द्वारा मकान को देखता है। यह दिखता है मेरे को (मकान), तो प्रकाश भी गया और प्रकाशक भी चला गया। तो समय-समय पर प्रत्येक जीव, प्रत्येक समय में स्व को जानता हुआ ही परिणमता है, मगर स्वीकार नहीं करता है। मानता (नहीं) है। दृष्टि पर (के ऊपर) पर है ना, अनादिकाल से। तो मैं पर को जानता हूँ, उसका नाम भावबंध है। भावबंध की पराकाष्ठा! बंध अधिकार में आचार्य भगवान ने, समर्थ आचार्य हो गए जिनका नाम तीसरे (मंगलम् कुंदकुंदाद्यो, नंबर पर है)। पर को जानना, पर को जानना अध्यवसान, महापाप है। कौन कहे समर्थ आचार्य के बिना? उनका तीसरा नाम ही यथार्थ है।

बंध अधिकार में कहा कि जैसे कोई आत्मा ऐसा माने कि मैं पर को मार सकता हूँ, मार सकता हूँ, सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, हाथ हिला सकता हूँ, ये जीभ हिला सकता हूँ, शब्द निकाल सकता हूँ, पर को मैं उपदेश दे सकता हूँ, वो पर का कर्ता मानता है और ये अध्यवसान, भावबंध, मिथ्यात्व तो है ही। मगर एक दूसरा मिथ्यात्व का प्रकार, अपूर्व, उन्होंने लिख दिया कि जो जिनागम में दूसरे शास्त्र में मिलना कठिन है। है तो सही। आहाहा! सबमें है वो तो बात। आचार्य भगवान ने कहा जैसे मैं मार सकता हूँ, वो पाप है। पर को मारने का अभिप्राय, श्रद्धा का दोष (है), ऐसे (ही) मैं पर को जानता हूँ (वह दोष है)। किसको जानता हूँ? छहद्रव्य को जानता हूँ। जो सर्वज्ञ भगवान ने कहा, ऐसे जो छहद्रव्य हैं, अस्तिरूप से, उनको मैं जानता हूँ, वह पापी मिथ्यादृष्टि (है)। अध्यवसान हो गया उसको, एकत्व हो गया, अपने को, अपने को जानता है स्व को और मानता है पर को, इसका नाम भ्राँति, अज्ञान, मिथ्यादर्शन है।

तो सचमुच जिसको आत्मा का अनुभव करना हो, तो उसको दो भूल टालनी (मिटानी) चाहिए कि मैं तो ज्ञाता हूँ, कर्ता (नहीं हूँ)। परिणाम होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है, समय-समय पर। ये भेदज्ञान की बात है। करने की बात तो दूर रहो, मगर अभी जानने के प्रकार की वो बात गुरुदेव ने बताई। कि (क्या) आत्मा पर को जानता है? समय-समय पर जानने में आता है ज्ञान अथवा ज्ञायक।

भेद से ज्ञान जानने में आता है। अभेद से ज्ञायक जानने में आ रहा है, प्रत्येक समय। एक समय ऐसा नहीं है कि जो आत्मा जानने में नहीं आवे। आहाहा! ऐसा फंक्शन, प्रक्रिया, अनादि-अनंत चालू है। स्वीकार करता है तो शुद्धोपयोग, सम्यग्दर्शन हो जाता है। और मैं पर को जानता हूँ, (इसमें) मिथ्यादर्शन तो है, अनंतकाल से, वो चालू रहता है।

तो पर को जानने का बंद कर दे। यानि अभिप्राय में छोड़ दे, (ऐसा मान) कि मैं पर को जानता नहीं हूँ। पर को जाननेवाला दूसरा है और स्व को जाननेवाला दूसरा है। पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है। मैं पर को नहीं जानता हूँ। मैं तो मेरे आत्मा को ही जानता हूँ। आहाहा! ऐसी अपूर्व चीज़ इसमें आ गई। अपने भाग्यवशात् ये व्याख्यान छप गया। (कैसेट) टेप में तो था, मगर छपकर निकल (गया), बाहर में निकल गया। ११वें भाग का है। उसका ये कॉपी है। आहाहा! टू कॉपी है। गुरुदेव के शब्द की टू कॉपी। एक भी शब्द आगे-पीछे, अधिक-कम, विपरीति बिल्कुल है नहीं। कोई निकाल लेना शब्द और कोई शब्द डाल देना, ओहोहो! वो तो महापापी है। ज्ञानावरणीय का कर्म-बंध उसको हो जाता है। ज्ञानी की वाणी में फेरफार करना, वो महापाप है।

अभी पैरेग्राफ चलता है, **ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में आने पर**, **ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में आने पर ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है**, क्या कहा? ज्ञेयाकार, ये ज्ञान, ज्ञेयाकार हो गया, ऐसा दिखता है। **परंतु यह ज्ञान की ही कल्लोलें हैं**। ज्ञेय की तरंगें नहीं हैं। **देखो**, **ज्ञान ज्ञेयाकार है- ऐसा नहीं**, **वह तो ज्ञेय को जानने के प्रति वैसे ज्ञानाकाररूप ज्ञान स्वयं ही हुआ है**। आहाहा!

क्या कहते हैं? तो वो ज्ञान है, अपना आत्मा उसमें जानने में आ रहा है, इसलिए वो ज्ञानाकार ही है। मगर ज्ञेय के लक्ष्यवाला ऐसा मानता है कि ये मेरा ज्ञान, ज्ञेयाकार हो गया। ज्ञेय का जो स्वरूप है, ऐसा मैं हो गया। राग को जाना तो मैं रागी हो गया, वो तो गलती है। रागी हुआ नहीं है। वो तो ज्ञानमय है और ज्ञानमय ही रहनेवाला है। कभी तीनकाल में रागमय होनेवाला है ही नहीं। आहाहा! भ्राँति है तेरी।

वह तो ज्ञेय को जानने के प्रति वैसे ज्ञानाकाररूप ज्ञान स्वयं ही हुआ है, स्वयं अपने से, अपने को जानता है। आत्मा, आत्मा को जानते हुए ही परिणमता है। पर को जानता हुआ परिणमता ही नहीं है। पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है और स्व को जाननेवाला स्व-संवेदनज्ञान, आत्मज्ञान है।

वह तो ज्ञेय को जानने के प्रति वैसे ज्ञानाकार से ज्ञान स्वयं ही हुआ है, **उसमें ज्ञेय का कुछ है ही नहीं**। इसका अर्थ, ज्ञेय, ज्ञान का कर्ता तो नहीं है मगर ज्ञान की उत्पत्ति में परज्ञेय निमित्त भी नहीं है। निमित्त से निरपेक्ष उपादान काम करता है। शास्त्र निमित्त नहीं है, आत्मज्ञान की उत्पत्ति में। अरे! जिनवाणी में तो जगह-जगह लिखा है कि ज्ञान में निमित्त है, वो भूतनैगमनय का कथन है। जहाँ तक शास्त्र प्रति, जिनवाणी प्रति लक्ष्य रहता है, तहाँ तक आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता है। हाँ! जिनवाणी ने कहा कि मेरा लक्ष्य छोड़ दे, उसने माना। जिनवाणी ने कहा, उसने मान लिया। जिनवाणी का लक्ष्य, द्रव्यश्रुत का लक्ष्य छोड़ दिया और आत्मा का लक्ष्य किया, तो भावश्रुतज्ञान में आत्मा का अनुभव हो गया, तो कहा जाता है कि शास्त्र से आत्मज्ञान हुआ क्योंकि भूतनैगमनय लागू पड़ती है। यानि एक समय के पहले वो शास्त्र पढ़ता था। शास्त्र का लक्ष्य छूट गया। छोड़ा नहीं, छूट गया। इधर (आत्मा) का लक्ष्य आता है तो

(शास्त्र का लक्ष्य) छूट जाता है, तो अनुभूति होती है। आहाहा! समयसार मेरा उपकारी है। द्रव्यश्रुत वाणी, जिनेन्द्र भगवान की वाणी को (मैं) नमस्कार करता (हूँ) क्योंकि आपकी, आहाहा! कृपा से, गुरु की कृपा से, जिनवाणी की कृपा से, मेरे को आत्मदर्शन हुआ, तो आपने ही आत्मा दिया (है)। आपसे ही मुझे आत्मज्ञान हो गया। ऐसे उपकारी जीव, उपकार भूलता नहीं है, मगर सचमुच तो निमित्त से उपादान में कार्य होता नहीं है। तीन काल में नहीं होता है। निमित्त से निरपेक्ष उपादान कार्य करता है। उपादान के कार्य में निमित्त की बिल्कुल अपेक्षा नहीं है। निमित्त अकिंचित्कर है। है, निमित्त भले हो, मगर निमित्त कर्ता बनता नहीं है।

वह तो ज्ञेय को जानने के प्रति...यह ज्ञेय का उसमे कुछ भी नहीं। ज्ञेय ज्ञानमे घुसा है, आया है, ऐसा है ही नहीं। अर्थात् ज्ञान, ज्ञेयरूप होता है- ऐसा है ही नहीं है। ऐसा है ही नहीं है। आहाहा! ज्ञेय से ज्ञान होता है, शास्त्र से ज्ञान (होता है)। भाई! वो व्यवहारनय का कथन है। कुशास्त्र ज्ञान में निमित्त होता नहीं है, सत्शास्त्र निमित्त होता है। तो निमित्त का आँकड़ा देने के लिए ऐसा कहा जाता है और अनुभव होने के पहले वो देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य, उसको होता ही है।

देशना-लब्धि सुनता है, शास्त्र पढ़ता है, मगर शास्त्र में आया कि **परलक्ष्य अभावात्, चंचलता रहितम्, (अचलम्) ज्ञानम्।** ज्ञान का लक्षण बताया, **परलक्ष्य अभावात्,** यानि शास्त्र के लक्ष्य से ज्ञान उत्पन्न होता नहीं है। **परलक्ष्य अभावात्, चंचलता रहितम् अचलम् ज्ञानम्।** ज्ञान, आत्मज्ञान अचल है। इसमें चंचलता नहीं है। मानसिक-ज्ञान में चंचलता है। आत्मिकज्ञान, जैसे आत्मा स्थिर है, ऐसे आत्मा का ज्ञान भी स्थिर हो जाता है। अखंड हो जाता है।

ऐसा है ही नहीं; अर्थात् ज्ञान, ज्ञेयरूप होता है- ऐसा है ही नहीं। ज्ञान, ज्ञानाकार ही है, ज्ञान, ज्ञानाकार ही है, ये ज्ञान की ही कल्लोलें हैं। वे ज्ञान की ही तरंगे हैं। ज्ञान की ही पर्याय है। ज्ञान की ही पर्याय, भेद अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय को जानती है और ज्ञान की पर्याय अभेद अपेक्षा से अभेद आत्मा को जानती है। आहाहा! पर्याय सहित, हो। आहाहा! पर्याय रहित होने पर भी पर्याय सहित का ज्ञान होता है। पर्याय रहित का श्रद्धान और पर्याय सहित का ज्ञान, समय एक। आहाहा! उसमें निश्चय-व्यवहार सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत सब आ जाता है। कोई दोष नहीं है। निर्दोष कथन है।

आहाहा! कैसा भेदज्ञान कराया है! गुरुदेव को प्रमोद आ गया! आहाहा! इस कलश में आचार्य भगवान ने कैसा भेदज्ञान कराया है। **वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई!** आहाहा! **ज़रा धीरज रखकर सुन।** धीरज रखकर सुन यानि तेरा पक्ष एक बाजू अभी रख दे। समुद्र में बाद में फेंकना। जो यह सही लगे तो वो फेंक देना। जहाँ तक यह सही न लगे तहाँ तक रख, बाजू में रख। तेरा जो पक्ष है कि मैं पर का कर्ता हूँ और मैं पर का ज्ञाता हूँ, ऐसे पक्ष को एक बाजू थोड़ा टाइम रख और हमारी बात धीरज से सुन। और (अगर) हमारी बात तुझको जँचे और आत्मानुभव हो जाए, तो तेरे पक्ष को समुद्र में डाल देना। यानि बात, बाद में जयपुर में आवे ही नहीं। समझे? आहाहा!

कैसा भेदज्ञान कराया है! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! ज़रा धीरज रखकर सुन। शांति से सुन, मध्यस्थ होकर सुन! पक्षपात छोड़कर सुन! आत्महित करने के लिए सुन! आहाहा!

दूसरे को समझाने के लिए मत सुन। मैं सुन लूँ, बाद में दूसरे को समझा दूँ, ऐसा है नहीं। उसका तो ध्येय फिर गया। उसका तो ध्येय क्या हुआ? मैं समझूँ और दूसरे को समझाऊँ, ध्येय फिर गया। आहाहा! ध्येय फिरा, तो ध्यान भी फिर गया, आशय अलग है। मेरे को तो मेरा आत्मा का कल्याण करना है। जो फ़रमाते हैं ज्ञानी, उसको समझने की मैं कोशिश करता हूँ। मेरे लिए समझना है, दूसरे के लिए नहीं समझना (है)।

ज़रा धीर होकर सुन। कहते हैं- आत्मा, पर का कुछ करे रागादि का, देहादि का, जड़-कर्म का, आयुष्य बाँधे, भविष्य का... भविष्य का आयुष्य तो बाँधता है कि नहीं? क्योंकि मोक्ष नहीं होता है, तो स्वर्ग का आयुष्य तो बाँधता है कि नहीं? कि नहीं बाँधता है। बाँधनेवाला जुदा है, नहीं बाँधनेवाला अंदर में जुदा रह जाता है। बंधन में राग का कार्य है, मेरा कार्य नहीं है। राग निमित्त होता है, भगवान आत्मा निमित्त-कर्ता भी नहीं। उपादान-कर्ता तो नहीं है कर्म के बंध में, मगर निमित्त-कर्ता भी नहीं है। निमित्त-कर्ता, अज्ञानी का अज्ञानभाव है। आहाहा!

कुछ करे या पर से आत्मा में कुछ हो, कर्म के उदय से अंदर में कुछ हो जावे, **कुछ हो, यह बात तो जाने दे**। शास्त्र से ज्ञान हुआ, ज्ञेय से ज्ञान हुआ, वो तो बात सब अभूतार्थनय की है। **यह बात तो है ही नहीं** यानि दो पदार्थ के बीच में कर्ता-कर्म संबंध तो है ही नहीं। निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी है ही नहीं और ज्ञाता-ज्ञेय संबंध भी है ही नहीं। अंदर में ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध है, पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध नहीं। आहाहा!

कहाँ ले जाना है? अंदर में ले जाने की बात है। अध्यात्म-शिविर है ना। इस शिविर का नाम अध्यात्म रखा, अध्यात्म। यानि आत्मा की बात इधर आयेगी, आहाहा! विकथा की सख्त मनाई है। पर की पंचायत (गपशप) में पड़ा। आहाहा! कषाय उत्पन्न होती है, ... पर को कुछ बदल नहीं सकता । कुछ कर तो सकता नहीं। बस! मुफ़्त में दुखी होता है। आहाहा! नुकसान उसको होता है।

यह बात तो है नहीं परंतु पर ज्ञान की पर्याय, परंतु पर ज्ञान की पर्यायमे ज्ञात हो, लेकिन परपदार्थ ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञात हो, **ज्ञान पर को जाने और परज्ञेय ज्ञान की पर्यायमे आ जाए**, (घुस जाय) **प्रविष्ट होते हैं- ऐसा है नहीं**। तीन बात।

फिर से। फिर से। हमारे प्रेमचंद जी कहें फिर से कहो। समझे? आहाहा! पक्का करने के लिए, समझने में तो आवे, मगर फिर से ज़रा। दोबारा कहो ऐसा, दोबारा कहो। यह मोस्ट इम्पोर्टेन्ट बात है। दो लाइन में लिखी है। आपकी पास है उसमें लाइन बना देना, लाल लाइन बना देना। आहाहा!

क्या कहते हैं फ़रमाते हैं, अनुभवी पुरुष? **पर ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं**, रागादि पर, देहादि पर, देव-गुरु-शास्त्र पर, अपने ज्ञान में जानने में आवें, ऐसा है नहीं। ज्ञान पर को जाने, ऐसा भी है नहीं। अभी अंदर का जो ज्ञेय-ज्ञायक का जो व्यवहार है ना, उसका निषेध करके निश्चय में चला जाता है। ज्ञेय-ज्ञायक का व्यवहार है, वो व्यवहार अभूतार्थ है।

लेकिन.... ये सूक्ष्म है। थोड़ा कठिन तो पड़े सबको। मालूम है सब हमको। मालूम पड़ता है, क्या करें? इसमें लिखा है, गुरुदेव ने फ़रमाया है तो समझना तो चाहिए ना? समझने की कोशिश करनी

चाहिए। देर लगे तो भी ऐसा (ना) तो नहीं करना। ज्ञानी के वचन के सामने, ऐसा (ना) नहीं करना। और समझने के बिना ऐसा (हाँ) भी नहीं करना। आहाहा! मगर ऐसा (ना) तो नहीं करना, बस इतना है।

क्या कहा? कि रागादि और पुद्गलादि परपदार्थ ज्ञान के अंदर जानने में आते हैं, ये जानने में आते हैं, ये जानने में आते हैं। ये जानने में आते हैं कि ज्ञायक जानने में आता है? तेरी बुद्धि कहाँ गई? यह जानने में आता है तुझे कि तेरा आत्मा जानने में आता है? यह जानने में आता है, राग तुझे जानने में आता है, कि राग जानने में आता है, उस समय तेरा आत्मा जानने में आता है, यह ले ना। उसका क्या काम है? आहाहा! व्यवहार के पक्षवाले जीव को, आहाहा! ऐसा ही लगता है कि भले मेरा आत्मा जानने में नहीं आता (है) मगर यह (राग) तो जानने में आता है ना। यह जानने में आता है, उसके पक्ष से तेरा आत्मा जानने में आते हुए भी, तेरा आत्मा तुझे प्रत्यक्ष होता नहीं (है)। राग प्रत्यक्ष हो जाता है। आहाहा!

डेढ़ लाइन हैं, अमृत जैसी हैं। पर, ज्ञान की पर्याय में जानने में आवे, ऐसा नहीं है और आत्मा जानने में नहीं आवे, ऐसा नहीं है। आत्मा तो जानने में आवे, आवे, आवे और पर जानने में आता ही नहीं (है)। ऐसा अस्ति-नास्ति-अनेकांत कर ले ना, काम हो जाएगा तेरा। आहाहा! जो तन्मय होकर जानने में आता है, उसका निषेध करता है और जो भिन्न हैं, रागादि, देहादि, वो मेरे ज्ञान में जानने में आते हैं। लक्ष्य उसके ऊपर (लक्ष्य) है, ज्ञेय पर लक्ष्य है।

पर ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, ज्ञान पर को जानता है, अरे! ज्ञान पर को जाने कि स्व को जाने? मान्यता है कि मैं पर को जानता हूँ। पर जानने में आता है और मैं पर को जानता हूँ। दोनों ही भूल हैं। **और परज्ञेय** अभी यह बात सूक्ष्म है। वो थोड़ा प्रश्न में करना, प्रश्न-उत्तर में। आहाहा! खुलासा आएगा ज़्यादा। आहाहा! समझ में न आवे तो। समझ में आ जावे, ऐसी बात है। नहीं आवे, ऐसी बात नहीं है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं, सर्वज्ञ स्वभावी, भगवान आत्मा हैं, सब। आहाहा! पर्याय को मत देखो। आहाहा! राग को मत देख, गौण कर दे। कर्म को, राग को, कर्मकृत राग को गौण कर दे। आहाहा!

पर ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, ज्ञान पर को जानता है और परज्ञेय ज्ञान की पर्याय में आते हैं, रागादि ज्ञान की पर्याय में आ जावें, क्रोध आ जावे, दुःख की पर्याय ज्ञान की पर्याय में आ जावे, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! मगर जो मानता है कि मैं पर को जानता हूँ और पर दुख, ज्ञान की पर्याय में आ गया, आत्मा में आ गया, उसको एकत्व हो गया, विभक्त नहीं हुआ। एकत्व-विभक्त की बात चलती है।

ज्ञान की (पर्याय में पर ज्ञेय) प्रविष्ट होते हैं- ऐसा है नहीं। वस्तु-द्रव्य, **वस्तु-द्रव्य एक ज्ञायकभावरूप है, वह स्वयं ज्ञान की पर्यायरूप, जाननक्रियारूप होता है**, ये ज्ञायकभाव है, अपने को जाने, ऐसी ज्ञान की क्रिया समय-समय पर होती है। पर को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय होती नहीं है। अरे! क्या कहें? तो स्वपरप्रकाशक का क्या होगा? कि व्यवहारमय हो गया और स्वपरप्रकाशक का पक्ष करे, तो अज्ञानमय हो गया। **वस्तु-द्रव्य एक ज्ञायकभावरूप है, वह स्वयं ज्ञान की पर्यायरूप, जाननक्रियारूप होता है, वह अपनी स्वपरप्रकाशक की क्रिया है**। स्वपर की प्रकाशक की क्रिया यानि ज्ञायक भी जानने में आता है और परपदार्थ का प्रतिभास होता है।

परपदार्थ जानने में आता है, ऐसा नहीं, परपदार्थ का प्रतिभास होता है। दर्पण में जैसे अग्नि और

बर्फ का प्रतिभास होता है, ऐसे (ही) अपनी ज्ञान की स्वच्छ पर्याय में अपना ज्ञायक ज्ञानानंद परमात्मा भी जानने में (आता है), प्रतिभासित होता है और वो भी प्रतिभासित होता है। इस अपेक्षा से स्वपरप्रकाशक, और **क्रिया है। उसमें पर ज्ञात होते हैं**- उसमें स्वपरप्रकाशक में, स्वपरप्रकाशक लिया है ना? उसमें पर जानने में आता है, **ऐसा कहना, वह व्यवहार है**, आहाहा! स्वपरप्रकाशक में पर जानने में आता है, ऐसा कहना व्यवहार है। सचमुच तो स्व और पर जिसमें प्रतिभासित होते हैं, ऐसी एक ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। ज्ञान की पर्याय में द्विरूपता है। स्व और पर का प्रतिभास होवे, तो दो को ज्ञान नहीं जानता है। स्व का प्रतिभास और पर का प्रतिभास दो को ज्ञान नहीं जानता है। दो (का) जिसमें प्रतिभास होता है, ऐसी एक ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। आहाहा! ऐसा है, सूक्ष्म तो है थोड़ा।

पर ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहना वह व्यवहार है, पर जानने में आता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। **बस! पर ज्ञात नहीं होता, अपनी जाननक्रिया जाननेरूप है, वह ज्ञात होती है!** आहाहा! स्व-पर दो जानने में नहीं आता है। कहा जाता है दो जानने में आता है तो स्वपरप्रकाशक के नाम में भी भ्राँति हो गई।

ऐसा कल बाबूजी का आया था, उसमें वो कहा कि स्वपरप्रकाशक के नाम में भी, आहाहा! जीव भ्राँति कर लेता है। आहाहा! **अपनी जाननक्रिया जाननेरूप है, वह ज्ञात होती है!** अपनी, ज्ञान की क्रिया किसकी है? ज्ञेय की है कि आत्मा की? आत्मा की है। ज्ञान आत्मा का है। 'आत्मा का ज्ञान होने से, ज्ञान वह आत्मा है।' आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह (आत्मा है)। आहाहा! नींबू की खटास होने से खटास वह नींबू है। नींबू की खटास होने से खटास वह नींबू है। पर नींबू डाला दाल में, तो दाल खट्टी हो गई। ये खटास दाल की है, तो खटास दालमय हो गई। मगर खटास दालमय होती नहीं है। (नींबू) नींबूमय (खटास को) छोड़ता ही नहीं है। आहाहा! समझे? नींबू की खटास होने से खटास नींबू ही है। खटास और नींबू कहाँ जुदा है? एक (ही) है। आहाहा! ध्येय तत्व सिद्ध होता है। जिसको ध्येय का पक्ष आ गया हो ना, पक्ष हों! उसको ये ज्ञेय की बात जचती नहीं है। मेरे को सब मालूम है। आहाहा! ये पर्याय से सहित क्यों कहते हो आप? गुरुदेव ने तो पर्याय से रहित कहा है। अरे! रहित भी कहा है और सहित भी कहा है। दो बात उस पुरुष ने किया है।

ज्ञान-गोष्ठी में शुरुआत में आया है कि पर्याय से आत्मा अनन्य अभेद है। ज्ञानगोष्ठी है ना, इधर से छपा हुआ। आहाहा! पर पक्षवालों को ख्याल में नहीं आता है। पक्ष जहर है। आत्मा का पक्ष जहर है। वो समाज का या संस्था का या मंडल का या गाँव का पक्ष तो जहर का बाप है। आहाहा!

पंडितजी:- सही बात है!

उत्तर:- सही बात है! पंडित जी बोलते हैं, सही बात है। आहाहा! कौन किसका और किसका मंडल? और किसका मुमुक्षु मंडल? और किसका प्रमुख और किसका ट्रस्टी? आहाहा! और किसका? ये कम्प्युटर का मालिक कौन है? पाटनी जी साहब! आहाहा! भ्राँति है सब। अरे! इधर तो कहते हैं कि दृष्टि के विषय का जो पक्ष आ गया, उससे क्या? आचार्य भगवान फ़रमाते हैं, जो दृष्टि के विषय की मास्टरी जिनके पास है, उन्होंने कहा कि दृष्टि का विषय तेरे पास आ गया कि मैं शुद्ध हूँ, अभेद हूँ, चिन्मात्र हूँ,

ज्ञायक हूँ, उससे क्या? वो तो विकल्प है, वो तो पक्ष का विकल्प (है) यानि अनंतानुबंधी का राग है। आहाहा! मिथ्यात्व तो गया नहीं और आत्मज्ञान तो हुआ नहीं। आहाहा! पक्ष के नाम (चढ़ गया)। हाँ! इतना है। पक्ष में आ जाता है, मगर आ जाता है। टिकता पक्ष नहीं है। स्वभाव का पक्ष आता है, उसको पक्ष टिकता नहीं है और व्यवहार का पक्ष आता है, वो तो टिक जाता है, वहाँ। आहाहा! व्यवहार का पक्ष आया और पक्षातिक्रान्त हो (जाये), ऐसा नहीं बनेगा। व्यवहार का निषेध आवे, निश्चय का पक्ष आ जावे, तो पक्षातिक्रान्त होने का चांस (संभावना) है, चांस (संभावना) है।

पर ज्ञात नहीं होता, ओहो! परपदार्थ जानने में नहीं आता। ये भगवान महावीर, ये प्रतिमा जी है। इधर उनकी प्रतिष्ठा हुई थी और मैं उस टाइम इधर आया था। गोदीका जी सेठ ने सोलह लाख रुपए उस टाइम में खर्च किये थे। सोलह लाख रुपया! उस टाइम का सोलह लाख! आज तो दो-तीन करोड़ हो गया। आहाहा! कितने साल हुए, लगभग? चौबीस साल पहले की बात है। चौबीस साल पहले की बात है। गुरुदेव इधर आये थे, पधारे थे और यहाँ उस समय ज़रा तकलीफ़ थी। कर्फ्यू चलता था। उस समय में मैं आया था यहाँ।

उस समय गुरुदेव का व्याख्यान आया। आहाहा! भगवान की प्रतिष्ठा, भगवान की प्रतिष्ठा के अवसर में, उपयोग में आत्मा प्रतिष्ठित हो जावे, ऐसी बात उन्होंने कह दी। क्या कहा? सूक्ष्म बात करता हूँ। आहाहा! यह कान से प्रत्यक्ष सुनी हुई बात है। गुरुदेव ने व्याख्यान में कहा कि निर्मल पर्याय का कर्ता (आत्मा) उपचार से भी नहीं है। निर्मल पर्याय का कर्ता उपचार से है, व्यवहार से है, परिणमता है, तो कर्ता है, ऐसा कहा जाता है। मगर शुद्धोपयोग में बाधक है, इसलिए उपचार से (भी) कर्ता नहीं है, ऐसी बात आयी। (तो) मेरे को बहुत हर्ष आ गया, प्रमोद आ गया। तो वहाँ ठहरे थे वहाँ, जहाँ, वहाँ मैं गया, मेरे प्रमोद (को) जाहिर करने के लिए। आहाहा! मगर बहुत आदमी बैठे थे। वहाँ बातचीत, ऐसी स्थूल बातचीत चलती थी। (तो) मैंने कहा कि ये अवसर ठीक नहीं है। तो मैं चला आया। आहाहा! चौबीस साल पहले की बात! सम्यग्दर्शन का कर्ता उपचार से भी नहीं है क्योंकि वो कर्ता, पर्याय का कर्ता पर्याय है और आत्मा को कर्ता कहना उपचार है। वहाँ रुक जाता है, तो सम्यग्दर्शन तो टिकता है, मगर शुद्धोपयोग होता नहीं है। इसलिए उपचार का निषेध करके शुद्धोपयोग में आ जाता है, सम्यग्दृष्टि। आहाहा! ऐसा है। ऐसा है।

ऐसा नियमसार का परमार्थ प्रतिक्रमण है। उसमें भी, कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं, कारण भी नहीं हूँ मैं। समर्थ आचार्य भगवान! कर्ताबुद्धि तो निकल गयी है। आहाहा! मैं कर्ता नहीं हूँ इस परिणाम का, यह कहने का अवसर तो है नहीं। अकर्ता तो हो गया तो भी मैं कर्ता नहीं हूँ (ऐसा कहना), उसका क्या कारण (है)? आहाहा! बहुत मंथन चला, बहुत मंथन चला, आहाहा! श्रवणबेलगोला में था, दो महीने। वहाँ भाव आ गया, वो तो उपचार से कर्ता का निषेध कर दिया है कि निश्चय मोक्षमार्ग का आत्मा कर्ता है, ऐसा जो उपचार आता था, उपचार से मैं कर्ता नहीं हूँ, अकर्ता हूँ, तो शुद्धोपयोग हो जाता है। आहाहा! श्रेणी के सन्मुख आ जाता है। इस काल में श्रेणी नहीं है, बाकी (नहीं तो ऐसे निषेध से) श्रेणी आ जावे। उपचार से भी निर्मल पर्याय का कर्ता नहीं है क्योंकि आत्मा अकर्ता है। पर्याय का कर्ता पर्याय है। मैं

कर्ता नहीं हूँ। मेरे को कर्ता कहना उपचार है। आहाहा! दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है, व्यवहारनय। करे पर्याय को पर्याय और कहा साधक उसको करता है, निर्मल पर्याय को, उपचार से भी कर्ता नहीं (है)। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात, चौबीस साल पहले इधर निकली थी, जयपुर में। आहाहा!

पर जाननेमें नहीं आता। आहाहा! वो कठिन पड़ता है (कि) पर जानने में नहीं आता है। मेरे ऊपर बहुत उपसर्ग आया। समझे? उपसर्ग करनेवाला भी उधर सोनगढ़ में से निकला। आहाहा! बहुत उपसर्ग आया। क्या ये घड़ी नहीं जानने में आती है? देखो भैया! कितना बजा है? कि साहब! आठ को सत्तावन मिनट बजे हैं। तो क्या नहीं जानने में आई घड़ी? आहाहा! देखो भैया! ऐसा है। और आत्मा पर को नहीं जानता है, तो केवली भगवान को वो मानता नहीं है। ऐसा कहें। आहाहा! अज्ञानी की तो कोई मर्यादा होती नहीं है। समझते नहीं हैं। क्या करें? आहाहा! कौन जानता है? वो इन्द्रियज्ञान जानता है। मैं नहीं जानता हूँ। आत्मा, आत्मा को जानता है, इन्द्रियज्ञान पर को जानता है। दो भाग पड़ गया। चले जा। आहाहा!

पर जाननेमें नहीं आता, अपनी जाननक्रिया जाननेरूप है, वह जानने में आती है! भेद अपेक्षा से। प्रदीपजी! वो भेद का कथन समझाने के लिए (है), है तो अभेद! क्या कहा? ज्ञान की पर्याय और ज्ञायक, ज्ञेय की अपेक्षा से अभेद ही है। तो भी समझाने के लिए कहा जाता है कि पर जानने में आता नहीं है, ज्ञान की पर्याय जानने में आती है क्योंकि अनार्य जीवों को अनार्य भाषा बिना, अभेद में भेद किए बिना समझा सकते नहीं। लेकिन भेद ग्रहण करने योग्य नहीं है। ज्ञान की पर्याय ही जानने में आती है और ज्ञायक जानने में नहीं आता है, ये भेद का अवलंबन उसने किया। वो समझा नहीं। भेद के द्वारा अभेद में पहुँचाना था। आहाहा! कुछ न कुछ तर्क-वितर्क में चढ़ जाता है, आशय समझता नहीं है कि आशय ज्ञानी का ऊँचा है। ज्ञान की पर्याय को जो जानता है, तो ज्ञान की पर्याय और आत्मा अभेद होने से आत्मा जणित (जानने में आ) जाता है। आहाहा! पर्यायदृष्टि नहीं होती है।

पर जानने में नहीं आता है, अपनी जाननक्रिया जाननेरूप है। अपनी, हो! आत्मा को जानने की क्रिया, इन्द्रियज्ञान की बात नहीं। आहाहा! इंद्रियज्ञान तो ज्ञान ही नहीं है, वो तो उसका नाम ज्ञेय है। मोहराजा ने रखा नाम ज्ञान और सर्वज्ञ भगवान ने कहा कि वो ज्ञेय है। समझे? आहाहा! ऐसे आठ कर्म हैं ज्ञेय, आठ कर्म हैं ज्ञेय और अज्ञानी जीव ने नाम रखा निमित्त। तो आठ कर्म इकट्ठा हुआ, उनकी सभा भरी। तो कहें कि हमारा नाम बिगाड़ दिया है, अज्ञानी ने। हम तो ज्ञेय हैं, निमित्त तो हैं ही नहीं। तो क्या करें? तो प्रतिनिधि ने ठराव किया कि पाँच परमाणु इधर से जाओ सीमंधर भगवान के पास। फैसला लाओ कि हमारा नाम निमित्त है कि हमारा नाम ज्ञेय है। परज्ञेय! पर निमित्त है कि ज्ञेय है? वहाँ जाते ही सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया कि यहाँ तक क्यों आये? हमारी ब्रांच ऑफिस तो सोनगढ़ में है। तो सोनगढ़ का कोई मानता नहीं है इसलिए हम इधर आपके पास (आये हैं)। जाओ! आपका नाम ज्ञेय है, निमित्त नहीं है। जगत में कोई निमित्त जैसी बात ही नहीं हैं। सब उपादान हैं। जा! आहाहा! ये तो नैमित्तिक जिसको होता है, स्वभाव से च्युत होकर के राग होता है, तो परपदार्थ ज्ञेय होने पर भी नैमित्तिक की अपेक्षा से (उसको) निमित्त कहा जाता है। लक्ष्य वहाँ है, तो। आहाहा! ऐसी बात है।

गुरुदेव का एक अभिनंदन ग्रंथ निकला था, उसमें मैंने वो लेख लिखा था। आहाहा! बहुत साल पहले की बात है। ७५वीं जन्मजयंती। मुंबई में है ना, तो बड़ा पुस्तक अभिनंदन का, उसमें ये लेख है। आहाहा! पाँच परमाणु गए वहाँ (विदेह क्षेत्र) कि साहब! हमारा नाम निमित्त है कि ज्ञेय है? तो ज्ञानी उसको निमित्त जानता है कि ज्ञेय? आठ कर्म ज्ञेय हैं। जो ज्ञेय हैं, तो निमित्त छूट गया, तो इधर नैमित्तिक राग भी छूट गया। इधर ज्ञान हो गया, ज्ञान का ज्ञेय व्यवहारनय से कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- इधर निमित्त नहीं है। ज्ञेय को ही निमित्त कहा?

उत्तरः- ये ज्ञेय ही है। निमित्त नहीं है, ये ज्ञेय ही है। निमित्त मत लगाओ। निमित्त लगाने से नैमित्तिक इधर आ जाएगा। अभी नैमित्तिक की उत्पत्ति ही नहीं हो, तो (अगर) ज्ञेय मानो, तो इधर ज्ञान होगा। ज्ञेय जानो तो इधर ज्ञान होगा। निमित्त मानो तो इधर राग की नैमित्तिक अवस्था उत्पन्न होगी। आहाहा! सूक्ष्म बात है! अंदर में जाने की बात है। आहाहा!

तो निमित्त का कथन तो बहुत आता है। कर्म की बात! अरे भाई! ये नैमित्तिक की सिद्धि करने के लिए उसका लक्ष्य पर ऊपर है। उसका आश्रय करता है, तो नैमित्तिक की अपेक्षा से (उसका) उपचार वहाँ आता है, नैमित्तिक का उपचार निमित्त पर आता है कि निमित्त है, इधर नैमित्तिक है। आहाहा!

निमित्त-नैमित्तिक संबंध, वो ही संसार है। अरे! पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेय के संबंध का व्यवहार का जो पक्ष हो, तो वो भी संसार है। तो निमित्त-नैमित्तिक बात तो स्थूल में चली गयी। आहाहा! पैंतालीस साल के बाद चलती है ना बात। सूक्ष्म है बात! सूक्ष्म का अर्थ? नहीं समझ में आएगी, ऐसा नहीं जानना। उपयोग को सूक्ष्म करके, बराबर एकाग्र होकर, समझने की कोशिश करने से समझ में आ जाता है। नहीं समझ में आवे (क्या) इसलिए लिखा है? (क्या इसलिए) शास्त्र लिखा है समयसार, टीका समयसार की? तो नहीं कोई समझेगा इसलिए लिखा है? कि समझनेवाला होगा, इसलिए लिखा है। हमारे लिए लिखा है। समयसार में ऊपर हमारा नाम है। जो वाँचे-पढ़े, उसका नाम लिखा है। भारिल्ल जी पढ़ें, तो भारिल्ल जी का नाम है। पाटनी जी पढ़ें, तो उनका नाम है, ऊपर। हम पढ़ें तो हमारा नाम है। आहाहा! वो धर्म-पिता का पत्र आया है मेरे ऊपर, ४१५। ४१५ (गाथाएँ अर्थात्) पत्र, मेरे नाम पर आये हैं। आहाहा! कि तू भगवान है। तू रागी (नहीं है)। तुझे कर्म का बंध हुआ नहीं, होनेवाला नहीं। तू अबंध मुक्त परमात्मा है। दृष्टि दे तो पर्याय में मुक्ति हो जाएगी।

भगवान! तू इतना और ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से मानेगा तो तेरे स्वभाव का घात होगा। मैं पर का कर्ता हूँ और पर का ज्ञाता हूँ, तो तेरे स्वभाव का घात होगा। सम्यग्दर्शन धर्म प्रगट नहीं होगा। कषाय प्रगट होगी। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र (होगा)। आहाहा!

जाननेवाला जानने में आता है, ऐसा ले ना। थोड़ी देर तू ट्राई तो कर, कोशिश तो कर। आहाहा! कल स्टीकर दिया था ना सबको। आहाहा! अगर स्टीकर खत्म हो गए हों तो छपा लेना। इधर ही बनता है, स्टीकर बहुत। आहाहा! कोमलचंद भाई को कहा कि प्रभावना करने जैसी चीज़ है। बहुत सुनहरा वाक्य लिखा है, टोडरमलजी साहब ने। सभी शास्त्रों का उकेल (समाधान) करने की चाबी दी है, चाबी। हाँ! देखो! ये है। आहाहा! क्या लिखा है मोक्षमार्ग प्रकाशक में? यह चाबी है। आहाहा! ताला खुल जाएगा।

कपाट खुल जाएगा, अंदर का। राग और आत्मा की एकता टूट जाएगी और ज्ञान और आत्मा की एकता कथंचित् होकर अनुभव हो जाता है। आहाहा!

निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, आगम में, परमागम में, निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, उसको सत्यार्थ मानकर, मानकर हो! लिखा है। श्रद्धा में लेकर, मानकर शब्द है। ऐसे ही अकेला जानकर नहीं। आहाहा! **सत्यार्थ मानकर उसका तो श्रद्धान अंगीकार करना** कि आत्मा अकर्ता है, कर्ता है ही नहीं। समझे? ऐसा श्रद्धान कर लेना। **और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो** कि आत्मा, भेदज्ञान का अभाव हो तो राग का कर्ता है और भेदज्ञान का सद्भाव हो तो वीतरागभाव का कर्ता है। समझे? अकर्ता को कर्ता कहना वो व्यवहार है। **व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो, उसको असत्यार्थ मानकर** आहाहा! सत्यार्थ मान लिया है ना? राग का कर्ता आत्मा है, ऐसा माना है ना? वही संसार है। प्रदीपजी! राग का कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! बिठाना चाहिए, अपने हित के लिए संत की वाणी है वो। अनुभवी पुरुष थे। **असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।** आहाहा! कि भैया, कर्म बंधता है, उसमें आत्मा निमित्त तो है, भले कर्ता नहीं। वो असत्यार्थ कथन है, व्यवहारनय का कथन है। ऐसा समझने से आत्मा का लाभ होता है।

दूसरा **मैं जाननहार हूँ, मैं करनार नहीं हूँ।** दूसरा है-मैं जाननहार हूँ, मैं करनार नहीं हूँ। जाननार ही, जाननार ही, स्व-पर दो नहीं। जाननार ही जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता। आहाहा! मंत्र है, मंत्र है। आहाहा! जहर उतर जाएगा मिथ्यात्व का, अज्ञान का, ऐसा मंत्र है। डॉक्टर साहब ने खीसा (जेब) में रखा है। बराबर है! माल है उसमें। मंत्र है ना? आहाहा! संत का, संत का मंत्र है, ज्ञानी का मंत्र है। अपना पक्ष छोड़ देना चाहिए। पक्ष मारता है, जीव को। तत्व में पक्ष मारता है।

भगवान! तू इतना और ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से मानेगा तो तेरे स्वभाव का घात होगा। अभी आगे, एक थोड़ी और सूक्ष्म बात आती है। शांति रखना और ज्ञानी के वचन पर श्रद्धान करना। समझे? ज्ञानी अन्यथा कथन करते नहीं है।

सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं, गुरुदेव सर्वज्ञ की साक्षी देकर कहते हैं कि सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा फ़रमाते हैं, **लोकालोक जानने में आवे, ऐसी तेरी पर्याय नहीं है**; परपदार्थ जानने में आ जावे तेरे को, ऐसी तेरी ज्ञान की पर्याय नहीं है। थोड़ी बात सूक्ष्म तो है, मगर अमृत जैसी है। भेदज्ञान की बात चलती है। आहाहा! एकांत नहीं है, सम्यक्एकांत है। सब ख्याल में है। आहाहा!

हमारे ऊपर भी वो ही (आक्षेप) आया था कि लालूभाई सर्वज्ञ भगवान को उड़ाते हैं कि (भगवान) पर को जानते नहीं है। तो सर्वज्ञ भगवान तो लोकालोक को जानते हैं। आहाहा! बहुत। आहाहा! बहुत उपसर्ग आया मेरे ऊपर। दो साल तो (मैं) मौन रह गया। आहाहा! कोई टेका (सहयोग) देनेवाला है नहीं। उस टाइम नहीं था, उस टाइम। अभी तो हैं। आहाहा!

पंडितजी:- आपके वहाँ क्या उपसर्ग आएगा जो यहाँ आता है?

उत्तर:- यहाँ तो बहुत आते हैं। हमारे वहाँ तो कुछ नहीं, आपकी अपेक्षा से। तो उपसर्ग के टाइम में अपने को शांति रखना चाहिए और तो कोई उपाय है ही नहीं।

एक ऐसा बनाव बन गया। बहुत साल, ६० साल पहले की बात मैं कहता हूँ। मेरी बीस साल की उम्र थी। उस टाइम गाँधी जी की आंदोलन (चणवण), प्रवृत्ति चलती थी ना, स्वराज्य की। आहाहा! तो उसमें एक हरिजन बंधु निकलता था। गाँधी जी ने अपने हाथ से लिखा है। तो उसमें एक का पत्र आया, कार्यकर्ता (का), कोई गाँव से कि मैं नीचवान हूँ, मगर ये गाँव के लोग मेरे को ये आरोप देते हैं, ऐसा ही करता है, ऐसा करता है। तो मेरे को क्या करना? कृपा करके मार्गदर्शन मेरे को दो। तो गाँधी जी ने लिखा कि, जो तेरे पर आक्षेप करे, ईर्ष्या करे, कादव (कीचड़) उछाले। कादव समझे ना? हाँ! कीचड़ उछाले, बहुत करे, तब तेरे को मौन रहना, उसको उत्तर नहीं देना। जवाब नहीं देना, अपने आप वो मर जाएगा। मर जाएगा यानि वो आदमी मर जाएगा, ऐसा नहीं। उसकी प्रवृत्ति, खुराक मत दे। तू खुराक मत दे। (वो) विरोध करता है, उसका बचाव मत कर। झूठा आक्षेप करे (तो क्या) उसके ऊपर बचाव नहीं करना? कि नहीं, बचाव नहीं करना। शांति से बैठ। दो-चार दिन, आठ दिन, पाँच दिन, पन्द्रह दिन, छह महीने में वो विरोध मिट जाएगा। गुरुदेव की वो ही रीति थी, वो ही रीति गुरुदेव ने अपनाई थी। विरोधियों को बिल्कुल उत्तर नहीं देना। आहाहा!

एक दफ़े गुरुदेव ने, मुंबई में ऐसा हुआ। मुंबई में (गुरुदेव) पधारे थे। तो एक समाचार-पत्रवाला था, उसको पैसा देते थे। प्रजातंत्र या ऐसा नाम था। तो वो गुरुदेव के विरुद्ध बहुत लिखे, बहिनश्री के बारे में बहुत दफ़े कीचड़ उछाले। समझे? कोई पढ़ नहीं सके मुमुक्षु, ऐसा। उसको तो पैसा देते थे। गुरुदेव ने पेपर पढ़ा। सब को बुलाया। एक पैसा उसको नहीं देना, जो लिखना हो तो लिखे। हाँ! जो लिखता है, ऐसा है, तो सुधार लेना और लिखता है, ऐसा नहीं है, तो अपने को कुछ नहीं। अपने को कुछ नहीं करना। आहाहा! तो अपने आप वो विरोध खत्म हो गया। बाद में बनाव तो कोई कुदरती ऐसा है ना कि ज्ञानी का जो विरोध करता है, उसका फल बहुत, कभी उदय में आवे तो एक भव में आ जाता है। कैंसर हो गया (उसको), मर गया। जयंतीभाई! मुंबई में यह बनाव बना। आहाहा!

ऐसे गुरुदेव के ऊपर आक्षेप आया था। एक बहुत छोटी उम्र में, १८-२० साल की उम्र में, पालेज में। समझे? तो वो तो निर्दोष छूट गए, ये तो निर्दोष ही थे। मगर बनाव ऐसा बना कि उस जीव का खून हो गया। आहाहा! ऐसा पर का, पर (के ऊपर) पर आक्षेप करना, कीचड़ उछालना, वह मुमुक्षु का कार्य नहीं है। पंडित जी ने कहा हमारे ऊपर बहुत उपसर्ग आता है। शांत रहना। बस! वही उपाय है, दूसरा उपाय नहीं है। एक तरफी युद्ध विराम कर देना। एक तरफी युद्ध विराम कर देना।

एक तरफी। रशिया ने ऐसा काम किया। एकतरफी..... कि अपने अणुबम बंद करो तो ही समाधान (होगा)। (कहें) कि नहीं, हमें तो अब (युद्ध) नहीं करना है। अच्छा! वो रशिया चला गया। एक तरफ ठहराव हो गया। हम अणुबम का कार्यक्रम बंद करते हैं। हमको लड़ाई नहीं करनी है। समझे? एकतरफी युद्ध विराम किया तो वो भी शांत हो गए अभी। ऐसे ये पंडित जी कहते हैं कि बहुत उपसर्ग आवे, शांत रहना। विरोधियों के सामने विरोध नहीं करना। बस शांत रहना। वही उपाय है। अपनी कषाय बढ़े नहीं, अपनी कषाय (रूप) प्रवृत्ति होवे नहीं। अपना काम चल जाए और विरोध नहीं करें, तो वो अपने आप बंद हो जाएगा।

ऐसा एक बनाव दूसरा हुआ कि सास-बहु। सास-बहु हमारे वहाँ सास-बहु कहते हैं ना। हाँ! तो सास बहुत गाली देवे। नभाई (गालियाँ देवे) ऐसे बहुत-बहुत कोई पार नहीं, ऐसी गाली दे। तो वो भी गाली देवे सामने (बहू), वो भी कम नहीं (थी)। बहू भी सामने बोले। अच्छा! तो एक दफ़े ऐसा हुआ कि अब इसका क्या करना? तो एक ज्योतिषी के पास गई वो बहू। ये क्या करना? (सास) मेरे को बहुत डाँटती है। तो (कहें) कि देख! एक मंत्र देता हूँ, तेरे को। उस मंत्र का बराबर पालन करना। समझे? एक धागा दिया, उसमें गाँठ, गाँठ मार दी। जब सासु बोले, तब मुँह में रख देना और दो दाँत के बीच में बराबर दबाये रखना। ढीला नहीं करना, दबाये रखना। अच्छा! ऐसा करूँ मैं? तो वो तो सासु का काम तो चालू हो गया। मगर वो (बहू) बोली ही नहीं। अरे! बोलती भी नहीं है, बोल ना कुछ। नभाई (है क्या)? (गालियाँ देवे) बोलती नहीं है, मौन हो जाती है। वो दो दिन, चार दिन, आठ दिन हुआ, थक गई वो (सास)। थक गई, सामने (से कोई) प्रतिकार ही नहीं। ऐसे विरोधियों के सामने विरोध नहीं करना, अपना बचाव भी नहीं करना। तुम झूठा है और मैं सच्चा हूँ, ऐसा नहीं करना। वो होने दो। आहाहा! उपसर्ग तो आता है। आहाहा! ज्ञानी पर आता है। हें? साधक, मुनिराज पर भी आता है। पार्श्वनाथ भगवान पर नहीं आया था? उपसर्ग तो आता है, उसमें क्या? शांत रहो, बस। अपने को अपनी प्रवृत्ति मस्ती से करना, बस! वही उपाय, दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! क्योंकि गुरुदेव की गैरहाज़िरी है, (अब) अपनी जवाबदारी है। अपनी यानि पंडित जी की जवाबदारी ज़्यादा है। समझे? हाँ! गंभीर हो जाना दूसरा कोई उपाय नहीं।

देखो! एक बात सूक्ष्म आती है। टाइम हो गया। सवा नौ हो गया। कल! कल! हमें तो टाइम बताया ना, गुरुदेव ने सिखाया है। टाइम पर काम करना, सब।

जिनवाणी स्तुति।